आदर्श-रत्न

(हिन्दी)

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-श्रीज्ञानेश्वर	५
२-श्रीज्ञानेश्वरकी शिक्षा	८
३-श्रीनामदेव	९
४-श्रीनामदेवकी शिक्षा	११
५-श्रीएकनाथ	१२
६-श्रीएकनाथकी शिक्षा	१५
७-समर्थ रामदास स्वामी	१६
८-समर्थ रामदास स्वामी-की शिक्षा	१९
९-श्रीतुकाराम	२०
१०-श्रीतुकारामकी शिक्षा	२३
११-श्रीरामकृष्ण परमहंस	२४
१२-श्रीरामकृष्ण परमहंस-की शिक्षा	२७
१३-स्वामी विवेकानन्द	२८
१४-स्वामी विवेकानन्दकी शिक्षा	३०
१५-स्वामी रामतीर्थ	३१
१६-स्वामी रामतीर्थकी शिक्षा	३३
१७-स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती	३४
१८-स्वामी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वतीकी शिक्षा	३७
१९-महात्मा तैलंगस्वामी	३८
२०-महात्मा तैलंगस्वामी-की शिक्षा	४०
२१-स्वामी भास्करानन्द	४१
२२-स्वामी भास्करानन्दजी-की शिक्षा	४३
२३-गोस्वामी विजयकृष्ण	४४
२४-गोस्वामी विजयकृष्ण-की शिक्षा	४६
२५-प्रभु जगद्बन्धु	४७
२६-प्रभु जगद्बन्धुकी शिक्षा	४९
२७-रमण महर्षि	५०
२८-श्रीरमण महर्षिकी शिक्षा	५३
२९-योगिराज अरविन्द	५४
३०-योगिराज अरविन्दकी शिक्षा	५७
३१-स्वामी योगानन्द	५८
३२-स्वामी योगानन्दकी शिक्षा	६०

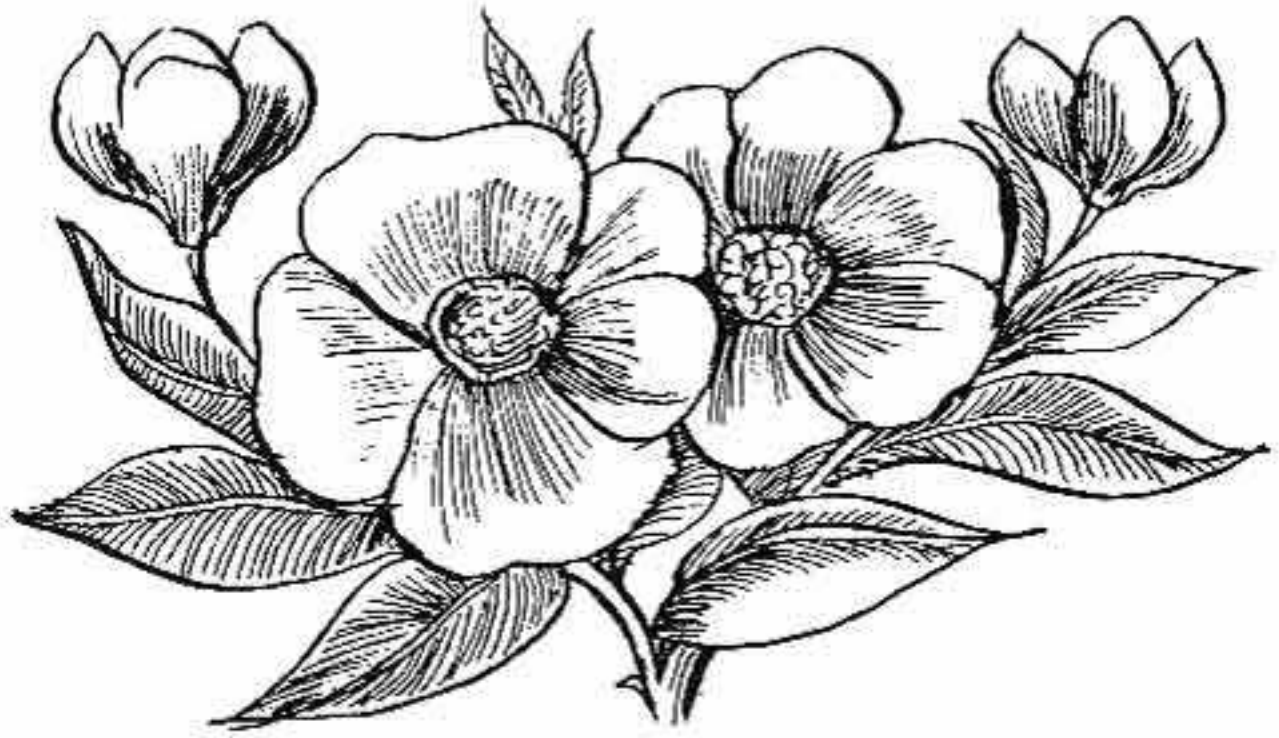

श्रीहरिः

आदर्श संत

श्रीज्ञानेश्वर

श्रीविट्ठल पन्तके तीन पुत्र और एक कन्या थी। उनके नाम थे निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव और मुक्ताबाई। श्रीविट्ठल पन्तने अपने गुरु स्वामी श्रीरामानन्दजीकी आज्ञासे संन्यास लेनेके बाद पुनः गृहस्थधर्म स्वीकार कर लिया था। अतः ब्राह्मणोंके आदेशसे अपनी पत्नी श्रीरुक्मिणी बाईके साथ उन्होंने प्रायश्चित्त करनेके लिये प्रयाग त्रिवेणी-संगममें देह-त्याग कर दिया। उस समय उनके चारों पुत्र बहुत छोटे थे। श्रीविट्ठल पन्त गृहस्थ होकर भी अत्यन्त त्यागका ही जीवन व्यतीत करते थे। उनके देह-त्यागके समय उनके घरमें कोई सम्पत्ति नहीं थी। भिक्षा माँगकर ही उनके बालक अपना निर्वाह करते थे।

श्रीज्ञानेश्वरका जन्म भाद्र कृष्ण अष्टमी सं० १३३२ में आलन्दीमें हुआ था। उनकी पाँच वर्षकी अवस्थामें ही

उनके माता-पिताने देह-त्याग कर दिया। इसके बाद आलन्दीके ब्राह्मणोंने कहा—'यदि पैठणके विद्वान् तुमलोगोंको यज्ञोपवीतका अधिकारी मान लेंगे तो हमलोग भी उसे स्वीकार कर लेंगे।' ब्राह्मणोंकी सम्मति मानकर वे चारों बालक पैठण गये। उस समय मुक्ताबाई तो बहुत ही छोटी बालिका थीं। पैठण पहुँचनेपर वहाँके विद्वान् ब्राह्मणोंकी सभा हुई। उन लोगोंने कहा—'इन बालकोंकी शुद्धि केवल भगवान्‌की अनन्य भक्ति करनेसे हो सकती है।'

ब्राह्मणोंने यज्ञोपवीतका अधिकार नहीं बताया। इससे भी इन लोगोंको कोई दुःख नहीं हुआ। ब्राह्मणोंके निर्णयको इन लोगोंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

ये चारों भाई-बहिन जन्मसे ही परम भक्त, ज्ञानी और अद्भुत योगसिद्ध थे। श्रीज्ञानेश्वरजी तो योगकी जैसे मूर्ति ही थे। कुछ दुष्ट लोग इन बालकोंके पीछे पड़कर इन्हें तंग किया करते थे। पैठणमें दुष्ट लोगोंने इनपर व्यंग किये और अन्तमें ज्ञानेश्वरजीसे कहा—'यदि तुम सबमें एक आत्मा देखते हो तो भैंसेसे वेदपाठ कराओ।' ज्ञानेश्वरजीने जैसे ही भैंसेके ऊपर हाथ रखा कि उसके मुखसे शुद्ध वेदमन्त्र निकलने लगे।

श्राद्धके समय जब पैठणके ब्राह्मणोंने इनके यहाँ भोजन करना स्वीकार नहीं किया, तब ज्ञानेश्वरजीने पितरोंको प्रत्यक्ष बुलाकर उन्हें भोजन कराया। इस

चमत्कारको देखकर पैठणके ब्राह्मणोंने इन्हें शुद्धिपत्र लिखकर दे दिया।

कुछ दिन पैठण रहकर सभी भाइयोंके साथ ज्ञानेश्वरजी नेवासे स्थानमें आये। इसी स्थानमें उन्होंने अपने बड़े भाई श्रीनिवृत्तिनाथजीके आदेशसे गीताका ज्ञानेश्वरी भाष्य सुनाया। वे अपने बड़े भाईको गुरु मानते थे। ज्ञानेश्वरी सुनानेके समय उनकी अवस्था केवल पंद्रह वर्षकी थी।

उसके बाद ज्ञानेश्वरजीने अपने सब भाई और बहिन मुक्ताबाईके साथ तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रामें अनेक प्रसिद्ध संत उनके साथ हो गये। उज्जैन, प्रयाग, काशी, गया, वृन्दावन, द्वारिका आदि तीर्थोंकी यात्रा करके वे फिर पण्ढरपुर लौट गये।

समस्त दक्षिण भारतमें ज्ञानेश्वर महाराज पूजित होने लगे थे। उस समयके सभी प्रसिद्ध संत उनका बहुत सम्मान करते थे। कुल इक्कीस वर्षकी अवस्थामें मार्गशीर्ष कृष्ण १३ सं० १३५३ को उन्होंने जीवित समाधि ले ली। उसके एक वर्षके भीतर ही सोपानदेव, मुक्ताबाई और श्रीनिवृत्तिनाथजी भी इस लोकसे परमधाम चले गये।

श्रीज्ञानेश्वरकी शिक्षा

सबमें व्यापक एक समान।
आत्मरूपसे श्रीभगवान्॥
वही सत्य है सबका रूप।
वही एक त्रिभुवनका भूप॥
उसे छोड़कर सत्य नहीं है।
जगमें कोई तथ्य नहीं है॥
नाम-रूपमय यह संसार।
देखो सोचो सदा असार॥
जब इससे होगा वैराग।
होगा श्रीविट्ठलसे राग॥
तब होगा यह अन्तर शुद्ध।
तब नर होगा सत्य प्रबुद्ध॥
राग-द्वेष मोहादिक चोर।
भरे हृदयमें लख तम घोर॥
जगे वहाँ जब ज्ञान प्रकाश।
तब ये सब पायेंगे नाश॥
भोगोंका हो मनसे त्याग।
तब प्रभुमें होता अनुराग॥
तब मिलता है पावन ज्ञान।
ज्ञान मोक्षप्रद शुद्ध महान्॥

श्रीनामदेव

नरसी ब्राह्मणी नामक स्थानमें कार्तिक शुक्ल ११ संवत् १३२७को नामदेवजीका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम दामा शेट और माताका नाम गोणाई था। परम्परासे यह कुल दर्जीका काम करता था और श्रीविट्ठलका भक्त था।

नामदेवजीने जैसे ही अक्षर लिखना सीखा, वे केवल 'विट्ठल' नाम ही बार-बार लिखा करते थे। उनका भगवत्प्रेम इतना सच्चा था कि भगवान्‌की मूर्तिके सामने अड़कर बैठ जाते—'तुम दूध पियो तो मैं पिऊँगा।' उस आठ वर्षके बालकके हठके सामने भगवान्‌को प्रकट होकर दूध पीना पड़ता था।

नौ वर्षकी अवस्थामें श्रीनामदेवजीका विवाह हो गया। किंतु इन्होंने गृहस्थीकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। घर छोड़कर पण्ढरपुर चले गये और वहीं बस गये। इनकी स्त्री भी वहीं आ गयीं। नामदेवजीके चार पुत्र और कन्याएँ हुईं। इनका परिवार खूब बढ़ गया। किंतु घरमें इनकी आसक्ति कभी नहीं हुई। ये तो श्रीपण्ढरीनाथमें ही चित्त लगाये रहते थे।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज तीर्थयात्राके समय नामदेवजीसे मिले और अपने साथ चलनेका आग्रह किया। नामदेवजीने कहा—'मेरे स्वामी तो श्रीविट्ठल हैं। वे आज्ञा दें, तभी मैं जा सकता हूँ।' कहते हैं कि स्वयं श्रीपाण्डुरंगने इन्हें ज्ञानेश्वरजीके साथ जानेकी आज्ञा दी।

तीर्थयात्राके समय राजपूतानेके मरुस्थलमें पहुँचनेपर दोनोंको प्यास लगी। बड़ी कठिनाईसे एक कुआँ मिला, पर उसमें जल नहीं था। ज्ञानेश्वरजी योगसिद्धिसे कुएँके तलमें प्रवेशकर जल पी आये। उन्होंने नामदेवजीसे पूछा—'तुम्हारे लिये भी इसी प्रकार जल ला दूँ?' नामदेवजीने कहा—'मैं दूसरेकी सिद्धिसे मिला जल कब पीने चला हूँ। मुझे जल पिलाना होगा तो विट्ठल प्रभु पिला देंगे।' उसी समय कुआँ जलसे ऊपरतक भर गया। तब नामदेवजीने जल पिया।

जब ज्ञानेश्वर महाराजने समाधि ले ली, तब नामदेवजी चालीस-पचास साधुओंके साथ वृन्दावन पहुँचे और व्रजके तीर्थोंका दर्शन करते हुए पंजाब चले गये। अठारह वर्षतक वे पंजाबमें रहे और घूम-घूमकर भगवद्भक्तिका प्रचार करते रहे।

गुरुग्रन्थ साहबमें नामदेवजीके साठसे अधिक पद मिलते हैं। गुरुदासपुर जिलेके 'धोमान' ग्राममें उनका बनवाया गुरुद्वारा है। पंजाबमें उन्होंने अपनी भक्तिके प्रभावसे कई चमत्कार दिखलाये थे। पीछे वे पंजाबसे पंढरपुर लौट आये।

अस्सी वर्षकी अवस्थामें सं० १४०७ वि० में श्रीविट्ठल मन्दिरके महाद्वारकी सीढ़ियोंपर नामदेवजीने देहत्याग किया। उनके मराठी और हिंदी पदोंका महाराष्ट्र, पंजाब तथा सभी भक्त-समुदायमें बड़ा सम्मान है। उनके पदोंमें भगवद्भक्तिका भाव कूट-कूटकर भरा है। साथ ही उनमें ज्ञान तथा सदाचारकी उच्च शिक्षा है।

श्रीनामदेवकी शिक्षा

विट्ठलसे मेरा नाता ही नाता।
वही पिता हैं, वे ही माता॥
परम दयामय करुणागार।
सबके रक्षक परम उदार॥
प्रतिपालक निशिदिन निज जनके।
वे ही रक्षक जनके प्रणके॥
उनकी शरण दास निर्द्वन्द।
स्वयं टूट जाते भव-फन्द॥
विट्ठल लेते स्वयं सँभाल।
पाप-पुण्य जगका जंजाल॥
निर्भय नित्य सदा उनका जन।
बस, उनमें ही रखता है मन॥
गाता उनके दिव्य चरित्र।
जपता उनका नाम पवित्र॥
रहता मग्न उन्हींकी आस।
उनके चरणोंमें विश्वास॥
सब स्थितियोंमें ही संतुष्ट।
श्रीविट्ठल-इच्छामें तुष्ट॥
पंढरपुर-स्वामी हैं जिसके।
देखे ओर भला फिर किसके॥

श्रीएकनाथ

पैठणमें संवत् १५९०के लगभग श्रीएकनाथजीका जन्म हुआ था। इनके पिता श्रीसूर्यनारायणजी और माता श्रीरुक्मिणीजी थीं। जन्मके कुछ काल बाद ही माता-पिताका देहान्त हो जानेके कारण इनका पालन-पोषण इनके पितामह चक्रपाणिजीने किया।

श्रीएकनाथजी बचपनसे बड़े प्रतिभाशाली और भजननिष्ठ थे। बाल्यावस्थामें ही इन्होंने रामायण, महाभारत तथा पुराणोंकी कथा सुन ली। बारह वर्षकी अवस्थामें ये भगवत्प्राप्तिके लिये व्याकुल रहने लगे। एक दिन रातके समय शिवालयमें बैठे हरिगुण गा रहे थे—उसी समय इन्हें देवगढ़में श्रीजनार्दन पन्तजीके पास जानेका दिव्य आदेश मिला। तत्काल ही ये चल पड़े और तीसरे दिन देवगढ़ पहुँच गये। श्रीजनार्दन स्वामीने इन्हें अधिकारी जानकर अपना शिष्य बनाया।

श्रीएकनाथजी छः वर्षतक गुरुसेवामें रहे। बड़ी तत्परतासे ये गुरुकी सेवा करते थे। गुरुकी कृपासे ही इन्हें भगवान् दत्तात्रेयका साक्षात् दर्शन हुआ। इसके बाद गुरुकी आज्ञासे शूलभञ्जनपर्वतपर जाकर ये कठोर तप

करते रहे। तप पूरा हो जानेपर फिर गुरुदेवके पास लौट आये। अब इन्हें गुरुदेवने संतदर्शन तथा भक्तिका प्रचार करनेके उद्देश्यसे तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी। तीर्थ-यात्रामें ही इन्होंने चतुःश्लोकी भागवतपर मराठीमें पद्यग्रन्थ लिखा।

श्रीएकनाथजीके पितामहने श्रीजनार्दन स्वामीसे एकनाथजीके नाम विवाह करके गृहस्थ बननेका आज्ञापत्र लिखा लिया था। तीर्थयात्रासे जब एकनाथजी लौट रहे थे, तब मार्गमें ही उनके पितामहने वह आज्ञापत्र दिखाया। गुरुकी आज्ञा स्वीकार करके एकनाथजीने विवाह किया। इनकी पत्नी श्रीगिरिजाबाई बड़ी ही पतिपरायणा आदर्श गृहिणी थीं। वे सदा पतिसेवामें तत्पर रहती थीं।

श्रीएकनाथजीके ग्रन्थोंमें सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धका मराठी पद्यानुवाद है। उनके और भी कई ग्रन्थ महाराष्ट्रमें प्रचलित हैं एवं सम्मान्य माने जाते हैं। अपना पूरा जीवन एकनाथजीने भगवद्-भक्तिके प्रचारमें ही लगाया। इनके धैर्य, अक्रोध, क्षमा एवं सर्वत्र भगवान्‌को देखनेके दृढ़ भावके विषयमें कई घटनाएँ प्रसिद्ध हैं।

श्रीएकनाथजी जब गोदावरी स्नान करके लौटते तो मार्गकी सरायका एक मुसलमान उनके ऊपर कुल्ला कर देता। बिना कुछ कहे एकनाथजी फिर स्नान करने लौट जाते। एक दिन तो उसने एक सौ आठ बार कुल्ला

किया और एकनाथजी प्रत्येक बार चुपचाप स्नान करने लौट गये। संतकी अद्भुत क्षमा देखकर वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा।

प्रयागसे गङ्गाजलकी काँवर लेकर श्रीरामेश्वरजीको चढ़ानेके लिये एकनाथजी जा रहे थे। मार्गमें एक उजाड़ भूमिमें एक प्यासा गधा तड़फ रहा था। एकनाथजीने वह गङ्गाजल उस गधेको पिला दिया।

उनके घर रातमें भूखे ब्राह्मण आये। वर्षा हो रही थी, भोजन बनानेको सूखा ईंधन नहीं था। एकनाथजीने अपने पलंगके पाये-पाटी जलानेको देकर भोजन बनवाया।

इस प्रकारके उदार लोकोत्तर चरित और भगवद्-भक्तिके चमत्कारकी घटनाएँ उनके जीवनमें बहुत अधिक हैं। इनके प्रभावसे पैठण और उसके आस-पास हरि-भक्तिकी धारा उमड़ पड़ी।

चैत्र कृष्ण ६ सं० १६५६ को गोदावरी-तटपर ही एकनाथजीने शरीर छोड़ा। उस समय ये पूर्ण स्वस्थ थे। गोदावरी स्नान करके हरिभक्तोंकी कीर्तनध्वनिके मध्य ही उन्होंने समाधि ले ली।

श्रीएकनाथकी शिक्षा

सबमें हैं श्रीपण्ढरिनाथ।
सादर अतः झुकाओ माथ॥
किसपर क्रोध करेगा कोई।
सबमें जब प्रभु विट्ठल वे ही॥
नाना रूप उन्हींके सुन्दर।
जग लीला वे ही लीलाधर॥
उन जगमय प्रभुकी सेवा कर।
जन जाता भवसागर है तर॥
'राम कृष्ण हरि' जपता नाम।
करता उन प्रभुके हित काम॥
अपनी माया-ममता त्याग।
नहीं जगत् विषयोंमें राग॥
प्रभु सेवा हित जगके काम।
है करता सप्रेम निष्काम॥
मन रखता श्रीनन्दकुमार।
परमानन्द रूप सुखसार॥
वह मायासे सब दिन पार।
जगदीश्वरका उसपर प्यार॥
जग पवित्र उससे है होता।
अज्ञानी भवमें पड़ रोता॥

समर्थ रामदास स्वामी

श्रीसूर्याजी पन्तकी पत्नी श्रीरेणुका बाईके गर्भसे चैत्र शुक्ल नवमी संवत् १६६५ को ठीक श्रीराम-जन्मके समय जो तेजोमय बालक हुआ, वही आगे जाकर समर्थ स्वामी रामदासके नामसे प्रख्यात हुआ। पिताने अपने इस पुत्रका नाम नारायण रखा था। नारायण बचपनमें खेल-कूदमें खूब निपुण थे। ये प्रतिदिन सूर्यनारायणको दो हजार नमस्कार किया करते थे।

आठ वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न कर लिया और उनकी कृपासे भगवान् श्रीरामके दर्शन भी इन्हें प्राप्त हुए। भगवान् श्रीरामने ही इन्हें मन्त्र दिया और इनका नाम रामदास रखा।

बारह वर्षकी अवस्थामें माता-पिताने इनके विवाहकी तैयारी की। महाराष्ट्र-प्रथाके अनुसार जब 'शुभ लग्न सावधान' कहा गया, तब ये सचमुच सावधान हो गये। मण्डपसे उठकर भागे और फिर बारह वर्षतक घरके लोगोंको इनका पता नहीं लगा।

घरसे भागकर तैरकर गोदावरी पार हुए और पैदल चलते हुए पंचवटी पहुँच गये। नासिकके पास टाफली ग्राममें एक गुफामें इन्होंने निवास किया। तीन वर्षतक वहाँ तप करते रहे। वहाँ फिर भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। भगवान्‌के आदेशसे श्रीसमर्थ तीर्थयात्रा करने निकले। उत्तर भारतमें काश्मीर और बद्रीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवरकी यात्रा करते नीचे लौटे और श्रीजगन्नाथपुरी होते रामेश्वरतक गये। इस प्रकार भारतके समस्त तीर्थोंकी इन्होंने यात्रा की।

बारह वर्षतक तपस्या और बारह वर्षकी तीर्थयात्रा करके समर्थ कृष्णा नदीके तटपर माहुली क्षेत्रमें रहने लगे। यहीं उनसे अनेक संत मिलने आते थे। श्रीतुकारामजी भी यहीं मिले थे। कुछ काल माहुलीमें रहकर फिर श्रीसमर्थने विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण किया। सं० १७०६ में सिंगवाड़ीमें महाराज शिवाजी उनके दर्शन करने आये और अपनेको उन्होंने श्रीसमर्थके चरणोंमें समर्पित कर दिया।

श्रीशिवाजी महाराज बार-बार श्रीसमर्थका दर्शन करने आते थे। सं० १७१२में जब श्रीसमर्थ सातारामें राजद्वारपर भिक्षा माँगते पहुँचे, तब शिवाजी महाराजने एक कागजपर अपना पूरा राज्य देनेकी बात लिखकर कागज उनकी झोलीमें डाल दिया। समर्थ स्वामी रामदासजीने शिवाजीको समझाया। गुरुके आदेशसे उनके प्रतिनिधिरूपमें शिवाजीने शासन-कार्य चलाना स्वीकार

किया। राज्य श्रीसमर्थका ही है, यह सूचित करनेके लिये अपने झंडेका रंग शिवाजीने गेरुआ रखा।

समर्थ स्वामी रामदासजीके जीवनके सम्बन्धमें अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ कही जाती हैं। इन्होंने एक मृतक पुरुषको जीवित कर दिया। एक अन्धे कारीगरको नेत्र-ज्योति दी और उससे श्रीराम, लक्ष्मण, जानकी तथा हनुमान्‌जीकी मूर्तियाँ बनवायीं।

धर्मप्रचारके लिये तथा हिंदू-समाजके संगठनके लिये इन्होंने स्थान-स्थानपर मठ स्थापित किये। महाराष्ट्र-युवकोंमें इन्होंने एक अद्भुत शक्तिका संचार किया। उनमें धार्मिक चेतना तथा संगठनकी भावना उत्पन्न कर दी। इनके बहुत-से ग्रन्थ मराठीमें हैं जो तत्त्वज्ञान एवं उत्तम शिक्षासे पूर्ण हैं। दासबोध उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

सज्जनगढ़में माघ कृष्ण ९ संवत् १७३९ को स्नान करके भगवान् श्रीरामकी मूर्तिके सामने आसन लगाकर समर्थ बैठ गये। इक्कीस बार 'हर हर' कहकर जैसे ही अन्तमें उन्होंने श्रीराम कहा—वैसे ही उनके मुखसे एक ज्योति निकलकर श्रीरामकी मूर्तिमें प्रविष्ट हो गयी!

समर्थ रामदास स्वामीकी शिक्षा

हतोत्साह कायर मत बनना।
कभी निराशामें मत पड़ना॥
धर्म-विमुख ही दुख पाते हैं।
राम-विमुख ही घबराते हैं॥
हैं समर्थ स्वामी श्रीराम।
जगमें भयका फिर क्या काम॥
क्यों निराश हो सेवक उनका।
त्यागो झूठा भय तुम मनका॥
सदा रहो तत्पर सब काल।
उद्यमयुत ही व्यक्ति निहाल॥
रखो विपत्ति-कालमें धैर्य।
तुममें जगे रामका शौर्य॥
रहो धर्मपर श्रद्धावान्।
सदा धर्मके सँग भगवान्॥
अपने बलका करो न गर्व।
जीव क्षुद्र है अतिशय खर्व॥
प्रभुके बल ही दास अजेय।
प्राप्त उसे होता है श्रेय॥
दास रामका सदा समर्थ।
सिद्ध सभी हैं उसके अर्थ॥

श्रीतुकाराम

दक्षिणके देहूग्राममें संवत् १६६५ में तुकारामजीका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम बोलोजी और माताका नाम कनकाबाई था। तेरह वर्षकी अवस्थामें पिताने इनका विवाह कर दिया, किंतु इनकी पत्नी रखुमाईको दमेकी बीमारी थी। इसलिये पिताने इनका दूसरा विवाह किया। दूसरी पत्नीका नाम जिजाई था।

तुकारामजीके पिता जब वृद्ध हो गये, तब उन्होंने घरका भार अपने बड़े पुत्रको देना चाहा; किंतु तुकारामजीके बड़े भाई सावजी बड़े ही विरक्त थे। इसलिये घरका भार १७ वर्षकी अवस्थामें तुकारामजीपर ही पड़ा। चार वर्षतक घरका सब काम ये ठीक चलाते रहे। उसके बाद तो इनपर संकटोंका पहाड़ ही टूट पड़ा।

पहले माता-पिताका देहान्त हुआ। फिर बड़े भाईकी स्त्रीका देहान्त होनेसे ये और भी विरक्त हो गये और घर छोड़कर तीर्थयात्रा करने निकल गये। इनके कर्जदारोंने कर्ज नहीं चुकाया और जो कुछ पूँजी थी भी, उसे धूर्त लोगोंने इनकी सरलताका लाभ उठाकर ठग लिया। घरपर कर्ज बढ़ गया। ऐसी अवस्थामें स्त्रीने दो सौ रुपये दिलाये।

उसका नमक खरीदकर तुकारामजीने ढाई सौमें बेचा तो सही, किंतु वे सब रुपये मार्गमें ही एक दुःखी व्यक्तिको दे दिये।

इनकी पहिली स्त्री बहुत सुशीला थी। किंतु उसका और इनके बड़े पुत्रका भी देहान्त हो गया। दूसरी स्त्री अत्यन्त कर्कशा थी। वह बराबर कटु वाक्य कहा करती थी। इन्हीं कठिन दिनोंमें अकाल भी पड़ गया। इन सब विपत्तियोंने तुकारामजीके वैराग्यको पक्का कर दिया। उनके पास जो कर्जदारोंके रुक्के थे, उनमेंसे आधे रुक्के उन्होंने छोटे भाई कान्हजीको देकर कहा—'इन रुक्कोंसे कुछ वसूल हो तो तुम अपना काम चलाओ।' अपने हिस्सेके रुक्के उन्होंने नदीमें डाल दिये। अब तो वे भगवान्‌के भजन-कीर्तनमें ही निमग्न रहने लगे। इसी समय अपने हाथों अपने बाबाके बनवाये श्रीविट्ठल-मन्दिरका इन्होंने जीर्णोद्धार किया।

देह-गेहकी सब चिन्ता छोड़कर भगवान्‌के भजनमें ही तन्मय रहनेवाले तुकारामजीके मुखसे अपने-आप कविता प्रकट हो गयी। उनके अभंगोंमें ज्ञानका गूढ़ तत्त्व प्रकट होने लगा। किंतु वाघोलीके वेदान्तके विद्वान् पण्डित रामेश्वर भट्टजीको यह बात बहुत बुरी लगी कि शूद्र होकर भी तुकाराम वेद-वेदान्तकी गूढ़ बातें मराठीमें कहें। उन्होंने देहूके हाकिमसे यह आज्ञा दिलायी कि 'तुकाराम देहू छोड़कर कहीं चले जायँ।' इसपर तुकारामजी रामेश्वर-

भट्टके पास गये और पूछा कि 'जो अभंग बन गये हैं—उनका क्या किया जाय।' रामेश्वरभट्टने उन्हें नदीमें डुबा देनेको कहा। तुकारामजीने अभंगोंकी बहियाँ इन्द्रायणीमें डुबा दीं।

किंतु इससे तुकारामजीको बड़ा दुःख हुआ। वे मानते थे कि भगवत्कृपासे उनके मुखसे अभंग निकलते हैं। फिर उन्हें भगवान्‌ने नष्ट क्यों कराया। दुःखके कारण अन्न-जल त्यागकर वे श्रीविट्ठल-मन्दिरके सामने एक शिलापर तेरह दिन पड़े रहे। अन्तमें भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और बोले—'तुम्हारे अभंगोंकी बहियाँ तो मैंने तुम्हारे भक्तोंको दे दी हैं। सचमुच अभंगोंकी बहियाँ नदीसे ऊपर आकर भक्तोंको मिल गयी थीं।

भक्तका अपराध करनेके कारण रामेश्वरभट्टके सारे शरीरमें भयंकर जलन हो रही थी। अन्तमें वे श्रीतुकारामजीके चरणोंपर आकर गिर पड़े और उनके शिष्य बन गये।

श्रीतुकारामजीके जीवनमें भक्तोंको और भी बहुत-से चमत्कार दिखायी पड़े। छत्रपति महाराज शिवाजी उनके दर्शन करने बार-बार आते थे। समर्थ रामदास स्वामीकी शरण जानेका आदेश शिवाजीको तुकारामजीने ही दिया था।

चैत्र कृष्ण २ संवत् १७०६ को तुकारामजी इस लोकसे चले गये। कहा जाता है कि भगवान्‌के दूत उन्हें सशरीर विमानमें बैठाकर वैकुण्ठ ले गये।

श्रीतुकारामकी शिक्षा

संकटमें भी कृपा श्यामकी।
उन करुणामय दयाधामकी॥
इससे घबरा मत दुख देख।
उसमें प्रभुकी करुणा लेख॥
माया है फैलाये जाल।
फँसे जीव व्याकुल बेहाल॥
जिसे छुड़ाना चाहें राम।
दुख आते उसपर सुखधाम॥
मोह छूटता मन वैराग।
दुखसे जगता निर्मल त्याग॥
इससे स्वजन जहाँ प्रतिकूल।
वहाँ त्याग अनुपम सुखमूल॥
जहाँ जगत्-जन हैं अनुकूल।
डरो वहाँ मानो ये शूल॥
हरिपर जनका है सब भार।
क्या चिन्ता रूठे संसार॥
योग-क्षेम वे रखते ही हैं।
भक्त सुरक्षा करते ही हैं॥
तुम बस रहो प्रेमके रंग।
गाओ गुण श्रीपाण्डूरंग॥

श्रीरामकृष्ण परमहंस

बंगालके हूगली जिलेमें 'कामारपुकर' स्थानमें १७ फरवरी सन् १८३६ को श्रीरामकृष्ण परमहंसका जन्म हुआ। इनका घरका नाम गदाधर चट्टोपाध्याय था।

चार वर्षकी अवस्थामें ही ये पहिली बार ध्यानस्थ हो गये। फिर तो यह रुचि बढ़ती ही चली गयी। स्कूलकी शिक्षामें रुचि न होनेके कारण प्राथमिक पाठशालासे ही पढ़ाई बंद हो गयी। किंतु अपने शील एवं सेवाभावके कारण वे आसपासके सभी ग्रामजनोंके प्रिय थे।

सन् १८५३ में अपने बड़े भाई रामकुमार चटर्जीके साथ श्रीरामकृष्ण कलकत्ते आये। तीन वर्ष बाद रानी रासमणिने इनके बड़े भाईको कलकत्तेके पास दक्षिणेश्वर-मन्दिरमें प्रधान पुजारी नियुक्त किया। तब वे बड़े भाईके सहायक बन गये और बड़े भाईके परलोकवासी होनेपर मन्दिरके प्रधान पुजारीका काम करने लगे।

पुजारीका काम करते हुए ही श्रीरामकृष्णने साधना प्रारम्भ की। बारह वर्षतक वे योगकी नाना प्रकारकी साधनाएँ करते रहे। यहीं स्वामी तोतापुरीसे उन्होंने संन्यास लिया और उनका नाम श्रीरामकृष्ण परमहंस हो गया।

बचपनमें ही श्रीरामकृष्णका विवाह हो गया था। उनकी पत्नी श्रीशारदा देवी दक्षिणेश्वरमें आकर रहने लगी थीं। वे परम सती इसीमें संतुष्ट थीं कि उन्हें दिनमें एक बार तो श्रीरामकृष्णका दर्शन हो जाता है। श्रीरामकृष्ण उन्हें जगदम्बा मानते थे। सभी नारियोंमें भगवती महाकालीका ही दर्शन करते थे।

श्रीरामकृष्ण परमहंसका सभी धर्मोंके प्रति समान आदरभाव था। उन्होंने ईसाई और मुसलमान धर्मोंके अनुसार भी साधना की और उन साधनाओंमें पूर्णता प्राप्त की। उनमें साम्प्रदायिकताका भाव नाममात्रको भी नहीं था।

उनके अनुगतोंमें सभी प्रकारके लोग थे। सबको वे उसकी रुचि तथा अधिकारके अनुसार भगवत्प्राप्तिके मार्गमें लगनेका उपदेश देते थे। उनकी उपदेश देनेकी शैली बहुत रोचक और प्रभावपूर्ण थी। प्रायः उपदेशमें लम्बी व्याख्या करनेके बदले वे कोई छोटा-सा दृष्टान्त दे दिया करते थे।

उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंके मनपर पश्चिमी सभ्यताका पूरा प्रभाव पड़ने लगा था। हिंदू-धर्मसे उनकी आस्था घटती जाती थी। श्रीरामकृष्णके अद्भुत प्रभावसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग उनकी ओर अधिक आकर्षित हुए। उनके प्रधान शिष्योंमें नरेन्द्र थे, जो आगे संन्यास लेकर स्वामी विवेकानन्द कहलाये और विदेशोंमें भी हिंदूधर्मके

गौरवको उज्ज्वल करनेका जिन्होंने पूरा प्रयत्न किया।

१६ अगस्त सन् १८८६ को श्रीरामकृष्ण परमहंसने संसारका त्याग किया।

उनका इतना व्यापक प्रभाव पड़ा था कि देश-विदेशमें सभी जगह उनके सम्बन्धमें धार्मिक लोगोंने बहुत कुछ लिखा है। उनके चरित और उपदेश अनेक भाषाओंमें छपे हैं।

सभी धर्म भगवत्प्राप्तिके मार्ग हैं। किसी एक धर्ममें पूरी निष्ठा रखकर आचरण करना और राग-द्वेषसे दूर रहना मनुष्यका कर्तव्य है। यही श्रीरामकृष्ण परमहंसकी मुख्य शिक्षा थी।

श्रीरामकृष्ण परमहंसकी शिक्षा

जगके हैं जितने भी धर्म।
श्रेष्ठ सभीके उत्तम कर्म॥
मार्ग सभी प्रभुको पानेके।
उसी ज्ञानघन तक जानेके॥
रूप भले हों उनके भिन्न।
लक्ष्य सभीका एक अभिन्न॥
राग-द्वेष उनमें अज्ञान।
सत्य-शोध सबका ही प्राण॥
सभी पूजते उसको एक।
जगतीमें जो हुआ अनेक॥
नामरूप गुण नित्य अनन्त।
मिले भला क्यों उसका अन्त॥
किसी नामको तुम अपनाओ।
किसी एक पथसे तुम जाओ॥
व्यर्थ लड़ो मत पथको देख।
तुम्हें मिलेगा वही अशेष॥
अपनेमें सच्चे हैं पथ सब।
उस प्रभुतक जाते हैं वे सब॥
चलो किसीसे चलते जाओ।
उस आनन्दधामको पाओ॥

स्वामी विवेकानन्द

१२ जनवरी सन् १८६३को श्रीविवेकानन्दजीका जन्म हुआ। उनका घरका नाम नरेन्द्रदत्त है। उनके पिता श्रीविश्वनाथदत्त पाश्चात्त्य सभ्यतामें विश्वास रखते थे। अपने पुत्र नरेन्द्रको भी अंग्रेजी पढ़ाकर पाश्चात्त्य सभ्यताके ढंगपर ही वे चलाना चाहते थे। नरेन्द्रकी बुद्धि बचपनसे बड़ी तीव्र थी और परमात्माको पानेकी उनकी लालसा भी प्रबल थी। वे पहिले ब्रह्मसमाजमें भी गये; किंतु वहाँ उनके चित्तको संतोष नहीं हुआ।

सन् १८८४में श्रीविश्वनाथदत्तकी मृत्यु हो गयी। घरका भार नरेन्द्रपर पड़ा। घरकी दशा बहुत खराब थी। कुशल यही थी कि नरेन्द्रका विवाह नहीं हुआ था। अत्यन्त गरीबीमें भी नरेन्द्र बड़े अतिथि-सेवी थे। स्वयं भूखे रहकर अतिथिको भोजन कराते, स्वयं बाहर वर्षामें रातभर भीगते-ठिठुरते पड़े रहते और घर आये अतिथिको अपने बिस्तरेपर सुला देते।

परमहंस रामकृष्णाजीकी प्रशंसा सुनकर नरेन्द्र उनके पास पहले तो तर्क करनेके विचारसे ही गये थे, किंतु परमहंसजीने देखते ही पहिचान लिया कि ये तो पहुँचे हुए संत हैं। परमहंसजीकी कृपासे इनको आत्मसाक्षात्कार हुआ। ये परमहंसजीके शिष्योंमें प्रमुख हो गये।

पचीस वर्षकी अवस्थामें नरेन्द्रदत्तने गेरुआ वस्त्र पहिन लिया। इनका संन्यासका नाम विवेकानन्द हुआ। इसके बाद पैदल ही उन्होंने पूरे भारतवर्षकी यात्रा की।

सन् १८९३ में शिकागो (अमेरिका) में विश्वधर्म परिषद् हो रही थी। स्वामी विवेकानन्दजी उसमें भारतके प्रतिनिधिरूपसे पहुँचे। यूरोप-अमेरिकाके लोग उस समय पराधीन भारतवासियोंको बहुत हीन दृष्टिसे देखते थे। वहाँ लोगोंने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामी विवेकानन्दजीको सर्वधर्मपरिषद्में बोलनेका समय ही न मिले। एक अमेरिकन प्रोफेसरके उद्योगसे उन्हें बहुत थोड़ा समय मिला; किंतु उनके प्रवचनको सुनकर सभी विद्वान् चकित हो गये। फिर तो अमेरिकामें उनका बहुत स्वागत हुआ। वहाँ इनके भक्तोंका एक बड़ा समुदाय हो गया। तीन वर्षतक वे अमेरिका रहे और वहाँके लोगोंको भारतीय तत्त्वज्ञानकी अद्भुत ज्योति प्रदान करते रहे।

'अध्यात्मविद्या और भारतीय दर्शनके बिना विश्व अनाथ हो जायगा' यह स्वामी विवेकानन्दजीका दृढ़ विश्वास था। अमेरिकामें उन्होंने रामकृष्णमिशनकी अनेकों शाखाएँ स्थापित कीं। अनेकों अमेरिकन विद्वानोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

४ जुलाई सन् १९०२ को उन्होंने देह त्याग किया। वे सदा अपनेको गरीबोंका सेवक कहते थे। भारतके गौरवको देश-देशान्तरोंमें उज्ज्वल करनेका उन्होंने सदा प्रयत्न किया।

स्वामी विवेकानन्दकी शिक्षा

सदा विश्वगुरु भारतवर्ष।
नित्यसिद्ध उसका उत्कर्ष॥
देता आया जगको ज्ञान।
भारत अपने आप महान्॥
तत्त्व-ज्ञान भारतका जाय।
तो जग सब अनाथ हो जाय॥
जागो जागो भारतवासी।
त्यागो निद्रा और उदासी॥
ज्ञान-सूर्य भारतकी थाती।
साहस बसे तुम्हारी छाती॥
दीनबन्धु प्रभुको अपनाओ।
दीनोंके सेवक बन जाओ॥
सेवा और त्याग मानवता।
यही ज्ञानकी सच्ची क्षमता॥
लेकर यह आध्यात्मिक शक्ति।
प्रभुकी अन्तरमें शुचि भक्ति॥
करो कार्य आसक्ति विहीन।
करो सकल जगको स्वाधीन॥
करो देशका उज्ज्वल मान।
साथ सदा समझो भगवान्॥

स्वामी रामतीर्थ

पंजाबके मुरलीवाला ग्राममें सन् १८७३ को दिवालीके दिन गोस्वामी ब्राह्मण-कुलमें रामतीर्थका जन्म हुआ। इनका घरका नाम तीर्थराम था। जन्मके कुछ समय ही बाद माताका परलोक-वास हो जानेके कारण इनका पालन-पोषण इनकी बुआने किया।

गाँवकी पढ़ाई पूरी होनेपर तीर्थराम गुजरांवाला आये। वहाँ भगत धन्नारामजीकी देख-रेखमें इनकी शिक्षा चलने लगी। अत्यन्त गरीब होनेके कारण तीर्थरामको बहुधा उपवास करना पड़ता था, किंतु ये सदा मस्त रहते थे। इनकी प्रतिभा बड़ी तीव्र थी। गणितमें एम्० ए० करके ये उसी कालेजमें प्रोफेसर हो गये।

बाबा नगीनासिंह वेदी नामके संतका इनके जीवनपर पढ़ते समय ही प्रभाव पड़ा। सबेरे-शाम ये घंटों रावी नदीके किनारे ध्यान लगाये बैठे रहा करते थे। छुट्टियोंमें मथुरा-वृन्दावन पहुँच जाते थे। श्रीकृष्णप्रेमका इनपर नशा छा गया था। साथ ही उपनिषदों और वेदान्तके दूसरे ग्रन्थोंके अध्ययनका चसका भी बाबा नगीनासिंह वेदीके प्रभावसे पड़ गया था।

दृढ़ वैराग्य और सच्चे प्रेमके मेलसे इनका हृदय पवित्र हो गया। आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हुआ। सन् १९००में

प्रोफेसरी छोड़कर ये स्वामी रामतीर्थ बन गये। वनों-पर्वतोंमें अपनी मस्तीमें अकेले घूमते रहना इन्हें सबसे प्रिय था।

लोगोंके बहुत आग्रह करनेपर विश्वधर्म-परिषद्में सम्मिलित होने ये जापान गये और वहाँसे अमेरिका गये। इनकी मस्ती अद्भुत थी। जो इनको देखता था, वही मुग्ध हो जाता था। अमेरिकन पत्रोंने तो आपका परिचय देते समय 'जीवित ईसामसीह'की उपाधि दी। वहाँ बहुत-से लोगोंने इनसे संन्यासकी दीक्षा ली। इनका उपदेश सुनने दूर-दूरसे सहस्त्रों व्यक्ति वहाँ एकत्र होते थे। ढाई वर्ष विदेशोंमें रहकर वे फिर भारतवर्ष लौट आये।

सन् १९०६ की दिवालीके प्रातःकाल उत्तराखण्डकी शीतल गङ्गाकी धारामें स्वामी रामतीर्थने डुबकी लगायी। उनका शरीर धारामें बह चला और वे प्रणवकी ध्वनिमें एक हो गये। दिवालीके दिन ही राम बादशाह इस पृथ्वीपर पधारे थे और दिवालीको ही यहाँसे चले गये।

स्वामी रामतीर्थ मस्तीमें अपनेको बादशाह कहते थे। ये सचमुच बादशाहोंके बादशाह थे। इनका त्याग अद्भुत था। शरीरका मोह इन्हें छू भी नहीं पाया था। चलते-फिरते, खाते-पीते, सब समय ये परमात्मसत्तामें ही एकाकार रहते थे। इन्होंने जगत्के लोगोंको एक ही संदेश दिया—'शरीरके तुच्छ मोहको त्यागो। इस क्षुद्र सीमामें घिरकर ही तुम क्षुद्र बन गये हो। शरीरसे ऊपर उठो ! अनन्त ज्ञान, अनन्त वैभव, अनन्त ऐश्वर्य तुम्हारा स्वरूप है। उस व्यापक परम चैतन्यसे अपने एकत्वका अनुभव करो।'

—★—

स्वामी रामतीर्थकी शिक्षा

ओ विभु चिद्घन परम महान्।
बना क्षुद्र क्यों ओ अनजान॥
देह नहीं तू तो आत्मा है।
जगका स्वामी परमात्मा है॥
मोह देहका क्षुद्र बनाता।
बंदर-सा है नाच नचाता॥
'मैं' यह तन इस भाव पड़ा तू।
जन्म-मरणके चक्र पड़ा तू॥
माया तुझको नाच नचाती।
ठोकर दे दे दुख पहुँचाती॥
दुखी हुआ तू स्वामी होकर।
दासी-दास बना सुधि खोकर॥
यह माया तेरी है दासी।
तू स्वामी है तू अविनाशी॥
शाहनशाह सदा स्वाधीन।
महाकाल तेरे आधीन॥
त्याग मोह माया अज्ञान।
सत्यरूप अपना पहिचान॥
मिटैं मोह दुख सारे द्वन्द।
ज्ञानरूप तू है स्वच्छन्द॥

स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती

वाराणसी धामके सुप्रसिद्ध दण्डी संन्यासी परमहंस श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी सरस्वती आदर्श संन्यासी, सभी शास्त्रोंके अनुभवी विद्वान्, साधनसम्पन्न, परम ज्ञानी, सच्चे विरक्त पुरुष थे। वे भारतके भूषण थे। हिंदू-शास्त्रोंके ऐसे महान् विद्वान् उस समय भी बहुत ही थोड़े थे। बड़े-बड़े महामहोपाध्याय दिग्गज विद्वान् उनके चरणोंमें बैठकर शिक्षा प्राप्त करके अपनेको धन्य मानते थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। बड़े-बड़े विद्वान् उनकी प्रतिभाकी बातें सुनकर और देखकर चकित हो जाते थे।

उनकी शास्त्रोंपर अगाध श्रद्धा थी। केवल श्रद्धा ही नहीं, उन्होंने शास्त्रानुसार साधन करके उसमें सफलता प्राप्त की थी। काशीके प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण उनसे पूर्व तथा उत्तर मीमांसा पढ़ते थे। श्रीस्वामीजीने एक दिन उनसे कहा—

'आजकल ज्यों-ज्यों पाश्चात्त्य शिक्षाका प्रभाव बढ़ रहा है, त्यों-ही-त्यों संस्कृत-शिक्षापद्धतिका भी प्रचुररूपमें ह्रास हो रहा है। अध्यात्मशास्त्रके प्रति अश्रद्धा होना

इसीका परिणाम है। परंतु यह अश्रद्धा ही हिंदू-समाजका सर्वनाश कर रही है, इस बातको याद करना। मैं जो तुम्हें सुषुम्ना नाडीके द्वारा उत्क्रमणकी बात कह रहा था, वह किसी कविकी कल्पना या धर्मका उन्माद नहीं है, ध्रुव सत्य है। इसकी ध्रुव सत्यताका मैंने निजमें अनुभव किया है और स्वयं जाना है तथा विश्वास किया है। आज बीस वर्षसे भी अधिक काल हो गया, मैं योगप्रक्रियाके अनुसार सुषुम्नामार्गसे उत्क्रमणके मार्गका अनुसंधान कर रहा हूँ और मैंने इस पथको पा लिया है। कल्पनासे नहीं, सत्य-सत्य याद रखना उत्तरायणके वैशाख शुक्ल पक्षमें मैं इसी प्रकार सदाकी भाँति बद्ध, पद्मासन लगाये ब्रह्मद्रवमयी भगवती भागीरथीको देखते-देखते हँसते-हँसते प्रशान्त-चित्तसे भौतिक देहको त्यागकर अमृतधाममें चला जाऊँगा।'

यही हुआ, सन् १८९६ के वैशाख शुक्ल पक्षमें देह त्यागके तीन दिन पहले संध्याको घूमकर आश्रममें आनेपर अपने घनिष्ठ सेवक कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवीप्रसादसे आपने कहा—'परसों मेरे महाप्रस्थानका दिन है; व्यर्थ हो-हल्ला मत करना, मुझको तंग न करना, किसी वैद्यको न बुलाना, मुझे स्थिर रूपसे बैठे रहने देना, मैं कुछ कहूँ तो वही करना, अपनी इच्छासे कुछ भी करके मेरे चित्तमें विक्षेप मत करना।'

इतना कहकर स्वामीजी महाराज बद्ध पद्मासन लगाकर बैठ गये और ध्यानस्थ हो गये। रात वैसे ही

बीती। दूसरा दिन भी वैसे ही पूरा हो गया। तीसरे दिन उन्होंने ठीक मध्याह्नकालमें उसी प्रकार बद्ध पद्मासनमें अत्यन्त शान्त बैठे-बैठे हँसते-हँसते भगवती भागीरथीकी ओर देखते-देखते सुषुम्ना-रन्ध्रको भेदकर उत्तर पक्षसे पुनरावृत्तिहीन महाप्रयाण किया।

सबने देखा—बद्ध पद्मासन लगाये स्वामीजी मानो जीवित विराजमान हैं। वही ललाई लिये सुन्दर गौरवर्ण है, मुखपर मधुर मुसकान खेल रही है, नेत्र अर्धनिमीलित हैं, प्राण नहीं है, परंतु दैवी शोभा अब भी उस सर्वाङ्गसुन्दर देहको त्याग करनेमें मानो सकुचा रही है। इस समय उनकी अवस्था ८२ वर्षकी थी। आज कहाँ हैं ऐसे परम योगी, परम ज्ञानी, परम विरक्त, परम विद्वान् संन्यासी !

स्वामी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वतीकी शिक्षा

वेद उपनिषद् दर्शन सारे।
स्मृति पुराण इतिहास हमारे॥
हैं अक्षरशः सभी यथार्थ।
सबमें भरा सत्य परमार्थ॥
संस्कृत शिक्षासे अनभिज्ञ।
तामस मन कुतर्कमें विज्ञ॥
संशय, भ्रम, प्रमादमें लीन।
सदाचार-संयमसे हीन॥
ऐसे मनुज न पाते ज्ञान।
होता नहीं कभी उत्थान॥
श्रद्धा-तत्परता संयुक्त।
संयम शील त्यागसे युक्त॥
होकर जो करता संधान।
तब प्रकाशमय पाता ज्ञान॥
योग-मार्ग सच्चा विज्ञान।
साधन बिना न पाता जान॥
सबसे अगम सुषम्ना द्वार।
उससे जा होता भव-पार॥
मानवका यह लक्ष्य महान्।
पाना चिदानंद भगवान्॥

महात्मा तैलंगस्वामी

दक्षिण भारतके विजियाना ग्राममें सं० १६६४ के पौष मासमें एक सम्पन्न ब्राह्मण-परिवारमें शिवरामजीका जन्म हुआ। यही आगे चलकर श्रीतैलंगस्वामीके नामसे प्रख्यात हुए।

बहुत थोड़ी अवस्थामें शिवरामजीके पिताका देहान्त हो गया था। माताने ही उनका पालन-पोषण किया। धार्मिक माताकी शिक्षाने इनमें आध्यात्मिक प्रवृत्तिका बीज डाला और उसे बढ़ाया। शिवराममें बचपनमें ही वैराग्य और अध्यात्मकी ओर तीव्र रुचि उत्पन्न हो गयी।

४८ वर्षकी अवस्थामें इनकी माताका भी देहान्त हो गया। माताकी अन्तिम क्रिया करके शिवरामजी फिर घर नहीं गये। जहाँ माताकी देहका अग्नि-संस्कार हुआ था, वहीं आसन लगाकर बैठ गये। पीछे उसी स्थानपर उनकी कुटी बनी।

उस स्थानपर श्रीशिवरामजीने बीस वर्ष कठोर साधना की। इसके बाद किसी महापुरुषकी खोजमें वहाँसे बाहर निकले। पुष्कर-क्षेत्रमें पहुँच भगीरथस्वामीसे आपने दीक्षा ली। तभीसे आपका नाम तैलंगस्वामी पड़ गया।

दीक्षा लेनेके दो वर्ष बाद भगीरथस्वामीका परलोकवास हो गया। अब तैलंगस्वामीने तीर्थयात्रा प्रारम्भ की।

दक्षिणमें रामेश्वरम् और उत्तरमें मानसरोवर, पूर्वमें नैपाल-आसाम और पश्चिममें द्वारिका, इस प्रकार पूरे भारतके तीर्थोंकी यात्रा करके अन्तमें आप काशीमें रहने लगे।

श्रीतैलंगस्वामी सदा दिगम्बर रहते थे। सर्दी-गरमी और वर्षा सबमें वे नंगे ही पड़े रहते थे। उनके ऊपर सर्दी-गरमीका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वे त्रिकालज्ञ महापुरुष थे। अपने पास आनेवालोंके प्रश्नोंका उत्तर प्रायः उनके बिना कुछ पूछे-कहे ही दे दिया करते थे। एक बार मनुष्योंसे भरी एक नाव गङ्गाजीमें डूब गयी। श्रीतैलंगस्वामीने उसे मनुष्योंके साथ अपनी शक्तिसे जलसे ऊपर निकाला। नंगे रहनेके कारण इन्हें एक अंग्रेज अफसरने हवालातमें बंद कर दिया। हवालातका ताला तो बंद ही रहा, किंतु स्वामीजी बाहर टहलते दिखायी पड़े। इस प्रकारके और भी बहुत-से चमत्कार इनके विषयमें कहे जाते हैं।

पौष शुक्ल ११ सं० १९४४ को २८० वर्षकी अवस्थामें आप ब्रह्मलीन हुए। इनके आदेशके अनुसार इनका देह बक्समें बंद करके गङ्गाजीमें छोड़ दिया गया।

काशीमें दूर-दूरसे लोग तैलंगस्वामीका दर्शन करने आते थे। सहस्त्रों लोगोंने इनके उपदेशसे लाभ उठाया।

महात्मा तैलंगस्वामीकी शिक्षा

यह शरीर ईश्वरका मंदिर।
उसकी शक्ति इसीके अंदर॥
सहज उसे है सचमुच पाना।
कठिन इसे बस भ्रमवश माना॥
जितना जगमें नाम कमाने।
जगकी और वस्तुएँ पाने॥
स्वजनोंको या सुख पहुँचाने।
अशुचि देहको सदा सजाने॥
इन कामोंमें हम श्रम करते।
इनकी चिन्तामें हैं मरते॥
उसका यदि शतांश भी श्रम हो।
तनिक ध्यान उस ओर न कम हो॥
तो प्रभुको निश्चय पा जायें।
फिर न जगत्‌में भटकें आयें॥
कुछ न असम्भव हो फिर जगमें।
जो बढ़ जाय रामके मगमें॥
भक्ति श्रेष्ठ है साधन सुन्दर।
जिससे मिलता वह नित सुखकर॥
करें भक्ति उसकी हम मनसे।
धनी बनें इस उत्तम धनसे॥

स्वामी भास्करानन्द

कानपुरके पासके किसी गाँवमें सं० १८९० के आश्विन मासमें कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिवारमें श्रीभास्करानन्दजीका जन्म हुआ था। माता-पिताने उनका नाम मतिराम रखा था। यज्ञोपवीत-संस्कार होनेके बाद बारह वर्षकी अवस्थामें ही उनका विवाह हो गया, किंतु विवाहका कोई प्रभाव मतिरामपर नहीं पड़ा। बचपनसे ही उनमें जो वैराग्यका भाव था, वह बराबर बढ़ता ही गया।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें मतिराम संसारकी सब माया-ममता छोड़कर घरसे चुपचाप निकल पड़े। अनेक स्थानोंमें घूमते-घामते वे मालवा पहुँचे। मालवेमें वे सात वर्ष रहे और उस कालमें वेदान्तशास्त्रका अध्ययन किया।

उस समयके प्रसिद्ध महात्मा स्वामी श्रीपूर्णानन्दजी सरस्वती उज्जैनमें थे। मतिराम वहाँ उनकी शरणमें पहुँचे। स्वामी पूर्णानन्दजीने उन्हें संन्यासकी दीक्षा दी। अब मतिरामका नाम स्वामी भास्करानन्द सरस्वती हो गया।

संन्यास लेकर भास्करानन्दजी काशी चले आये। कुछ समयतक काशीमें रहकर उन्होंने भजन-साधन किया।

फिर भारतके विभिन्न तीर्थोंमें घूमते रहे। इस यात्रामें अनेक सिद्ध योगियोंसे उनकी भेंट हुई। योगके साधनोंके अभ्याससे अनेक सिद्धियाँ भास्करानन्दजीने प्राप्त कीं। अनेक स्थानोंपर उन्होंने चमत्कार भी दिखाये। किंतु सांसारिक विषयोंको या जगत्के सम्मानको पानेकी उनके मनमें तनिक भी कामना नहीं थी। उन्होंने यह समझकर सिद्धियोंका प्रदर्शन बंद कर दिया कि इससे जगत्के लोगोंकी भीड़ एकत्र होती है, मानका मोह बढ़ता है और भजनमें बाधा पड़ती है।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें वे दिगम्बर ही रहते थे। सं० १९५६ के आषाढ़ महीनेमें उन्होंने देह-त्याग किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि श्रद्धाके बिना आध्यात्मिक लाभ नहीं होता। श्रद्धा और विश्वास—ये परमात्माके मार्गमें बढ़नेकी मुख्य सीढ़ियाँ हैं। श्रद्धाहीन व्यक्तिपर अच्छे-से-अच्छे उपदेशका भी प्रभाव नहीं पड़ता। भगवान्को तो वही पा सकता है जिसके मनमें भगवान्पर, शास्त्रोंपर और भगवान्के भक्त संतोंके उपदेशोंपर श्रद्धा हो।

बहुत-से लोगोंने स्वामी भास्करानन्दजीके उपदेशोंसे प्रकाश प्राप्त किया। उनके उपदेशोंसे सैकड़ों व्यक्तियोंके जीवनमें अद्भुत सुधार हुआ।

स्वामी भास्करानन्दजीकी शिक्षा

श्रद्धा करो शास्त्रपर अविचल।
प्रभुकी सत्तापर मन निश्चल॥
संत-वचनपर दृढ़ विश्वास।
तब समझो अपने प्रभु पास॥
तर्क सदा ही है भटकाता।
तार्किक कहाँ सत्य है पाता॥
जिसे न श्रद्धा या विश्वास।
सत्य दूर होकर भी पास॥
उसे न शिक्षा देती राह।
तर्क सदा करता उर-दाह॥
तर्क रोग है अति ही हीन।
करता है वह चित्त मलीन॥
गुण बनता श्रद्धाके संग।
दृढ़ लगता फिर सच्चा रंग॥
इससे तुम श्रद्धा अपनाओ।
इसी मार्गसे विभुको पाओ॥
शास्त्र संत ईश्वरपर श्रद्धा।
धर्माचार हेतु है श्रद्धा॥
श्रद्धा देती वह ध्रुवधाम।
श्रद्धा ही शाश्वत विश्राम॥

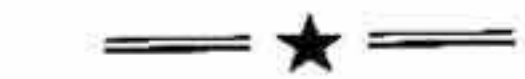

गोस्वामी विजयकृष्ण

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके परिकरोंमें श्रीअद्वैताचार्यजीका स्थान प्रमुख है। महाप्रभु आचार्यका बहुत सम्मान करते थे। उन श्रीअद्वैताचार्यजीके वंशमें ही गोस्वामी विजय-कृष्णजीका जन्म हुआ।

गोस्वामी विजयकृष्णजीके गृहदेवता श्रीगोविन्द थे। बचपनमें ये अपने उन कुल-देवताको अपने साथ खेलनेके लिये बार-बार बुलाया करते थे और न आनेपर प्रेमभरे रोषमें बुरा-भला भी कहते थे। बचपनसे ही श्रीगोविन्दमें इनकी दृढ़ सख्यभावना थी।

इनका स्वभाव ऐसा था कि जिस विषयकी चर्चा करते थे, उस विषयमें भली प्रकार निमग्न होकर उसके गम्भीर रहस्योंको पाये बिना इन्हें संतोष नहीं होता था। वेदान्तके तत्त्वज्ञानकी इन्होंने केवल चर्चा ही नहीं की, उसकी अपरोक्ष अनुभूति प्राप्त की।

ब्राह्मसमाज उस समय अपनी शिशु अवस्थामें था। समाजमें इस नवीन धर्मके प्रति नाना प्रकारके भ्रम फैले हुए थे। प्रारम्भमें श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजीकी इस धर्ममें श्रद्धा नहीं थी। किंतु संयोगवश बगुड़ा स्थानमें किशोरीनाथ

रायकी ब्रह्मसभामें सम्मिलित होनेपर इनमें उस समाजके प्रति कुछ भ्रमपूर्ण धारणा बन गयी थी, वह दूर हो गयी। फिरसे हृदयमें भक्तिकी धारा बहने लगी। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरके ईश्वरभक्तिसम्बन्धी उपदेशोंने इनको बहुत अधिक प्रभावित किया।

आगे चलकर ब्रह्मसमाजमें सत्यकी रक्षाका अभाव देखकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। उसी समय दक्षिणेश्वरमें परमहंस श्रीरामकृष्णजीके प्रभावसे प्रेमभक्तिकी गङ्गा प्रवाहित हो रही थी। श्रीविजयकृष्णजी गोस्वामी दक्षिणेश्वरके संतके सम्पर्कमें आये और उनका जीवन उसी प्रकाशसे जगमगा उठा।

उसके बाद तो श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीका पूरा जीवन भक्तिमय हो उठा। उनका उपदेश, उनका प्रचार—सभी कुछ भगवत्प्रेमके लिये होने लगा। वे सदा इस विषयमें सावधान रहे कि भगवान्‌के सम्बन्धमें उपदेश देते हुए अपने व्यक्तित्वका अभिमान या सम्प्रदायकी संकीर्णता न आ जाय। इसीलिये सहस्त्रों शिष्योंको साधन-पथमें लगानेपर भी इन्होंने अपना कोई सम्प्रदाय नहीं बनाया।

ऐसे महापुरुष सदा अमर होते हैं। उनका चरित हम सबको प्रेरणा देता है। उनकी वाणी भक्तोंके हृदयमें भगवत्प्रेमकी प्यास जाग्रत् करती रहती है।

गोस्वामी विजयकृष्णकी शिक्षा

जो पाना चाहे भगवान्।
जो चाहे प्रभु-प्रेम महान्॥
त्यागे वह इन्द्रियके भोग।
भोग सभी मनके हैं रोग॥
भक्ति भोगमें सहज विरोध।
जैसे दया और हैं क्रोध॥
चाहे एक साथ ही जाना।
पूरब-पश्चिम दोनों पाना॥
उसे कहें क्या, वह अनजान।
भ्रमसे नित रहता हैरान॥
रहे हृदय विषयोंकी चाह।
रहे न संयमकी परवाह॥
चाहे भगवत्प्रेम महान्।
है वह अतिशय ही अज्ञान॥
भोगोंमें दुख, रोग, अशान्ति।
प्रभुमें परमसुखद शुभ शान्ति॥
भोगोंसे अपना मुख मोड़।
चिन्मय प्रभुसे नाता जोड़॥
पावें हम आनन्द अपार।
मिटे सकल मायाव्यापार॥

प्रभु जगद्बन्धु

मुर्शिदाबाद (बंगाल) के डाहापाड़ा ग्राममें एक ब्राह्मण-परिवारमें सन् १८७१ में जगद्बन्धुका जन्म हुआ। महापुरुषोंकी अद्भुत शक्ति उनके बचपनसे ही प्रकट होने लगती है। १६-१७ वर्षकी अवस्थातक जगद्बन्धुमें भगवद्भक्ति, वैराग्य तथा दयाभाव इतना प्रबल हो गया था कि आसपासके लोग इन्हें संत मानने लगे। सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें लोग इनके कीर्तनमें सम्मिलित होने लगे। दूर-दूरसे बड़ी संख्यामें श्रद्धालु भक्त इनके उपदेश श्रवण करने आते थे।

जगद्बन्धुने बंगालमें घूम-घूमकर कीर्तनका प्रचार प्रारम्भ किया। कहा जाता है कि इनके शरीरमेंसे एक प्रकारका दिव्य तेज निकलता था, जिसे दूसरे लोग सहन नहीं कर सकते थे। इसलिये ये सर्वदा अपना शरीर ढके रहते थे। यह आदेश इन्होंने दे रखा था कि कोई छिपकर इन्हें स्नानादि करते समय न देखे। एक बार कुछ लोगोंने इस आदेशका उल्लङ्घन किया। उन्होंने छिपकर इन्हें देखा और देखते ही मूर्छित हो गये।

पिछले समयमें इनका शरीर बहुत रोगी हो गया। फिर भी इनका तेज ज्यों-का-त्यों बना रहा। इनके चारों ओर

निरन्तर हरिनाम-संकीर्तन होता रहता था। पूरे जीवनभर इन्होंने भगवन्नाम-कीर्तनका प्रचार किया। १७ सितम्बर १९२१ में इन्होंने देहत्याग किया। इसके नौ दिन बाद उसी स्थानमें इन्हें समाधि दी गयी।

इनके शिष्योंका विश्वास है कि 'इनके जीवनका कार्य पूरा नहीं हुआ है। इनका जो तिरोधान है, वह सम्पूर्ण नहीं है। वह केवल अस्थायी समाधि है। प्रभु जगद्बन्धु फिर उसी देहसे प्रकट होंगे और भगवद्भक्ति-प्रचारके अपने अधूरे कार्यको पूरा करेंगे।' इस विश्वासके कारण 'ग्वालचा मठ श्रीअंगन' (फरीदपुर स्टेशनके पास) जहाँ जगद्बन्धु सोया करते थे, वहीं पृथ्वीके भीतर उनका देह सुरक्षित दशामें रख दिया गया है।

जगद्बन्धुने अपने उपदेशोंमें कहा था—'हरिनामसे देह बनती है। कीर्तनसे श्रीकृष्णकी अभिव्यक्ति होती है।' इस वाणीके अनुसार उनके परमभक्त श्रीमहेन्द्रजीने १८ अक्टूबर सन् १९२१ से लेकर जबतक महाप्रभुका 'महाजागरण' न हो तबतकके लिये वहाँ अखण्ड महानाम-संकीर्तनका व्रत लिया है। वह संकीर्तन बराबर चल रहा है। कुछ श्रद्धालु त्यागी श्रीमहेन्द्रजीको इस कार्यमें सहयोग देते हैं। भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करते हुए ये लोग नामसंकीर्तनमें लगे हैं।

प्रभु जगद्बन्धुकी शिक्षा

राम-कृष्ण-हरि पावन नाम।
यही सभी सुखके हैं धाम॥
यही सभी साधनके सार।
इनके बिना सभी निःसार॥
सब विद्याका फल हरिनाम।
धर्म कर्म फल परम ललाम॥
स्वयं पवित्र बनो तुम आप।
दूर भगें तुमसे सब पाप॥
औरोंको भी करो पवित्र।
बनो स्वयं ही पुण्य चरित्र॥
जड भी सब पावन हो जायँ।
सारे दुख भवके मिट जायँ॥
गाओ खुलकर श्रीहरिनाम।
हरि-कीर्तन सब शुभका धाम॥
नाम-कीर्तन साधन एक।
कलिमें हैं नहिं योग-विवेक॥
कीर्तनके वश नन्दकुमार।
चिदानन्दमय परम उदार॥
करो कीर्तन सहित उमंग।
होवें सब भव-बन्धन भंग॥

रमण महर्षि

दक्षिण भारतके 'तिरुच्चिषि' स्थानके सर्वमान्य वकील सुन्दरम् अय्यरके मझले पुत्रका नाम वेंकटरमन था। यही आगे रमण महर्षिके नामसे विख्यात हुए। इनका जन्म ३० दिसम्बर सन् १८७९की रातको हुआ था।

सोलह वर्षतक वेंकटरमनका जीवन अध्ययनमें बीता। बचपनमें ही 'अरुणाचलम्' का नाम सुनते ही इनके ऊपर अद्भुत प्रभाव पड़ा। वहाँ जानेकी धुन उसी दिन इनके मनमें जाग उठी। एक दिन बिना कारण ही इनको भय लगा कि मेरी मृत्यु होनेवाली है। ये लेट गये और सोचने लगे कि मरनेपर क्या होगा। उस विचारका यह फल हुआ कि खाने-पीनेके सभी भोगोमें इनकी अनासक्ति हो गयी। स्वभावमें अद्भुत नम्रता आ गयी। साथ ही भगवान्‌की भक्ति जाग्रत् हो गयी।

एक दिन ये अचानक घर छोड़कर चल पड़े। अनेक कष्ट उठाते हुए अरुणाचलम् पहुँचे। वहाँ भी इन बालयोगीको नाना प्रकारके कष्ट उठाने पड़े। कुछ दुष्ट प्रकृतिके लोग और लड़के इन्हें तंग करते ही रहते थे,

किंतु इन्होंने मौनव्रत ले रखा था। कठोर तप करना ही इनको अभीष्ट था। अरुणाचलम् पहुँचते ही इन्होंने स्वयं यज्ञोपवीत और वस्त्र त्यागकर केवल कौपीन धारण कर लिया था।

अरुणाचलम्में पातालल्लिङ्गके भूगर्भगृहमें तप करते समय तो उस अन्धेरे स्थानमें भरे कीड़ोंने इनके शरीरको क्षत-विक्षत कर दिया था। एकान्त साधनमें सुविधाकी दृष्टिसे आसपासके अनेक मन्दिरोंमें समय-समयपर रमण महर्षि रहे। जब अरुणाचलम्में इनके तपकी ख्याति बढ़ी, तब इनके घरके लोगोंको इनका पता लग गया। चाचा, भाई, माता आदि इन्हें घर ले जाने कई बार आये और बहुत आग्रह किया, किंतु जो घरकी ममता छोड़कर साधु हो गया—उसका कहीं किसी घरको अपना मानकर जाना कैसे हो सकता था।

धीरे-धीरे रमण महर्षिके यशका विस्तार होने लगा। अनेक प्रख्यात लोग इनकी शरण आये। इनके समीप पहुँचते ही व्यक्ति अपने मनमें शान्तिका अनुभव करता था। इनके प्रथम कृपापात्र थे काव्यकण्ठ गणपति शास्त्री। उन्होंने ही इन 'गिरिनिवासी स्वामी'को 'रमण महर्षि' कहना प्रारम्भ किया और यही नाम लोकमें प्रख्यात हो गया। गणपति शास्त्रीजीपर कृपा करके ही महर्षिने मौन तोड़ा और उपदेश प्रारम्भ किया।

महर्षि रमणने विरूपाक्ष गुफामें ही उपदेश देना प्रारम्भ किया था। भक्तोंकी संख्या बढ़ने लगी। महर्षिकी तपःशक्तिके अनेक चमत्कार वहाँ व्यक्त हुए। पीछे विरूपाक्ष गुफा छोड़कर स्कन्दाश्रममें इन्होंने रहना प्रारम्भ किया। यहींपर धीरे-धीरे विशाल रमणाश्रम स्थापित हुआ।

समस्त प्राणियोंके प्रति आत्मभाव ही रमण महर्षिका संदेश था। पशु-पक्षियोंतकसे इनकी गाढ़ मैत्री थी। एक बार आश्रममें कुछ चोर आये। सभी आश्रमवासियोंको उन्होंने पीटा। महर्षिने सब आश्रमवासियोंको मना कर दिया था कि चोरोंसे कोई झगड़ा न करे। चोरोंने इनके एक पैरमें लाठी मारी थी। चोट कड़ी थी। महर्षिने इसके विषयमें कहा—'भगवान् चोर बनकर आये। उनकी पूजामें मैं कोरा नहीं रहा हूँ। मुझे भी प्रसाद मिला है।'

१४ अप्रैल सन् १९५० को इस समयके उन महान् तपस्वी तत्त्वदर्शी संतने इस नश्वर लोकका त्याग किया।

श्रीरमण महर्षिकी शिक्षा

तप ही है देता सब शक्ति।
तपमें साधककी अनुरक्ति॥
वाणीका तप मौन महान्।
अथवा सत्य वचन प्रिय जान॥
किंतु सहज सच्चा तप मनका।
उसके बिना व्यर्थ तप तनका॥
रहे मौन मन चिन्तन त्याग।
स्थिर, एकाग्र, न कोई राग॥
अपने आपेमें ही लीन।
यही परम तप मन स्वाधीन॥
सबमें देखे आत्मा एक।
सबमें समझे जीवन एक॥
सबसे स्नेह, क्षमाके भाव।
स्वार्थरहित शुभ मङ्गल चाव॥
तब पवित्र जीवन यह मान।
यही सफल है सच्चा ज्ञान॥
बिना त्याग संयम अपनाये।
कैसे चित्त शुद्धता आये॥
शान्ति मिले संयम अपनाओ।
प्रभुका परम विमल पद पाओ॥

योगिराज अरविन्द

१५ अगस्त सन् १८७२में कलकत्तामें अरविन्दका जन्म हुआ। जब ये सात वर्षके थे तभी इनके दो भाई इंगलैंड शिक्षा प्राप्त करने जा रहे थे। अरविन्द भी उनके साथ ही गये। वहाँ एक अंग्रेज-परिवारमें इनका पालन-पोषण हुआ। वहीं इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इंगलैंडमें रहते हुए अंग्रेजीके अतिरिक्त ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन भाषाओंका भी इन्होंने अध्ययन किया।

सन् १८९३में अरविन्द भारत लौट आये और १३ वर्षतक बड़ौदा राज्यके विभिन्न पदोंपर काम करते रहे। इस समयमें उन्होंने संस्कृत तथा कई भारतीय भाषाएँ सीखीं और कई काव्य-ग्रन्थोंका निर्माण किया।

सन् १९०६ में बड़ौदा छोड़कर श्रीअरविन्द कलकत्ते आये। वहाँ वे बंगाल नेशनल कालेजके प्रिन्सिपल-पदपर आये थे। देशमें उस समय स्वाधीनता-प्राप्तिका प्रयत्न चल रहा था। बंग-भंग आन्दोलनने उसे तीव्र कर दिया था। महाराष्ट्रमें लोकमान्य तिलक तरुणवर्गको प्रोत्साहित कर रहे थे। श्रीअरविन्दने उसी समय 'वन्दे मातरम्' पत्रका

सम्पादन प्रारम्भ किया। इस पत्रमें विदेशी सरकारकी तीव्र आलोचना करनेके कारण अरविन्दको जेल जाना पड़ा। किंतु फिर इन्हें सरकारने छोड़ दिया।

सूरत कांग्रेसके समय गरमदलकी राष्ट्रीय परिषद्के सभापति श्रीअरविन्द ही थे। क्रान्तिकारी दलके कार्योंमें भाग लेनेके संदेहमें इन्हें सरकारने फिर बंदी किया; किंतु एक वर्षतक जेलमें रखकर कोई प्रमाण न होनेसे १९०९ ई०में छोड़ दिया। एक वर्ष जेलमें रहते समय श्रीअरविन्दने योगाभ्यास किया। जेलसे छूटनेपर उन्होंने 'धर्म' और 'कर्मयोगिन्' ये दो पत्र निकाले। किंतु अब उनका मन राजनीतिमें नहीं लगता था। एकान्तमें योगाभ्यास करनेके लिये वे सन् १९१०में चन्द्रनगर चले गये और अप्रैलमें वहाँसे समुद्रके मार्गसे पाण्डुचेरी पहुँच गये। पाण्डुचेरी पहुँचनेके बाद वे पूर्णतः साधनमें लग गये।

सन् १९१४ तक एकान्त-सेवन तथा योगाभ्यासके बाद श्रीअरविन्दने तत्त्व-ज्ञानविषयक 'आर्य' नामक मासिक पत्र निकाला। इस पत्रमें उनके कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ क्रमशः निकलते रहे।

आरम्भमें पाण्डुचेरीमें श्रीअरविन्दके साथ केवल चार-पाँच श्रद्धालु जन ही रहते थे। पीछे उनके आध्यात्मिक पथका अनुसरण करनेके लिये दूर-दूरसे लोग आने लगे। साधकोंकी संख्या बढ़ने लगी। श्रीअरविन्दाश्रम साधकोंका पावन तीर्थ बन गया।

५ दिसम्बर सन् १९५० को श्रीअरविन्दने अपने भौतिक देहका त्याग किया। उस समयतक अरविन्दाश्रम पूरे विश्वमें आध्यात्मिक केन्द्रके रूपमें प्रख्यात हो चुका था।

श्रीअरविन्दकी शिक्षाका सार है—'सर्वात्मा परम प्रभुके सम्मुख पूर्ण आत्मसमर्पण। अपनी सारी इच्छाओं एवं योजनाओंको छोड़कर सर्वथा प्रभुपर निर्भर हो जाना जिसमें वह दिव्य चेतन-सत्ता व्यक्तिमें उतर सके और अपना कार्य निर्बाध पूरा कर सके।'

योगिराज अरविन्दकी शिक्षा

मानव है इच्छाका दास।
इससे उसमें दुखका वास॥
अपने अहंकारमें बद्ध।
क्षुद्र बना वह और अशुद्ध॥
हो सकता वह परम महान्।
पा सकता असीम विज्ञान॥
करना हमें नहीं कुछ काम।
श्रमका इसमें कहीं न नाम॥
बस हम टाँग अड़ाना छोड़।
दें अपनी हम शर्तें तोड़॥
सभी कामना बन्धन त्याग।
तजें अहंतामें अनुराग॥
प्रभुपर ही निर्भर हो जायें।
कृपा-प्रतिक्षा-पथ अपनायें॥
बनें जगन्नायकके यन्त्र।
यही श्रेष्ठतम सुन्दर मन्त्र॥
प्रभु चाहैं सो करें करायें।
इस पथसे हम उनको पायें॥
करें अहंतक सभी समर्पित।
उतरें प्रभु हममें फिर निश्चित॥

स्वामी योगानन्द

परमहंस योगानन्दजीका जन्म गोरखपुरमें एक बंगाली परिवारमें हुआ था। इनके पिता बाबू भगवतीचरण घोष एक सत्यनिष्ठ और न्यायप्रिय व्यक्ति थे। इनकी माता रामायण और महाभारतपर आस्था रखनेवाली तथा बड़ी उदार प्रकृति की थीं। भगवती बाबूके गुरु थे महान् बंगाली संत श्रीलाहिड़ी महाशय। माता भी उनकी शिष्या थीं और उन्होंने योगानन्दके लिये श्रीलाहिड़ी महाशयसे आशीर्वाद प्राप्त किया था।

कुछ दिनों बाद भगवती बाबूकी बदली लाहौर हो गयी। कहते हैं कि वहाँ एक दिन एक साधुने आकर माताको सूचना दी कि कल पूजामें बैठनेपर तुम्हारे हाथमें एक यन्त्र (ताबीज) आ जायगा, जिसे मरते समय अपने बड़े लड़केको यह कहकर दे जाना कि एक वर्ष बाद वह उसे योगानन्दको दे दे। योगानन्दके पास कुछ काल रहकर वह फिर लुप्त हो जायगा। साधुके बताये अनुसार ही सब घटनाएँ घटीं। उसके हाथमें आते ही योगानन्दको योगकी कई सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो गयीं। इससे प्रकट है कि जन्मसे ही अन्तरिक्ष स्थित योगी महात्माजन इनके जीवन-रथका संचालन कर रहे थे।

यन्त्रके लुप्त हो जानेपर इनके आध्यात्मिक गुरु श्रीयुक्तेश्वरानन्दजी इनको स्वयं ही एक दिन काशीकी एक गलीमें मिल गये और कलकत्तेके पास श्रीरामपुर-स्थित अपने आश्रममें आकर रहनेकी आज्ञा दी।

जुलाई १९१४ में श्रीयुक्तेश्वरानन्दजीने इनको संन्यासकी दीक्षा दी। कुछ समय बाद गुरुकी आज्ञासे ये राँचीमें एक ब्रह्मचर्यविद्यालयकी स्थापना करके उसका योग्यतापूर्वक संचालन करने लगे। यह विद्यालय अब भी चल रहा है और एक प्रख्यात संस्था है। इसमें आधुनिक पाठ्य-क्रमके साथ-साथ योगकी भी शिक्षा दी जाती है।

इसी विद्यालयमें एक दिन ध्यान करते समय योगानन्दजीको अमेरिका जानेकी प्रेरणा प्राप्त हुई। सन् १९२० में पहली बार अमेरिका गये और पंद्रह वर्षतक रहे। अमेरिकामें जगह-जगहपर इनके भाषण हुए। लोग इनकी क्रियायोगकी पद्धतिसे बड़े प्रभावित हुए। इन्होंने वहाँ एक आश्रम भी खोल लिया। सन् १९३५ में भारत वापस आकर एक वर्ष बाद ये फिर विदेश चले गये। अब अमेरिकामें इनके कई स्थानोंपर आश्रम खुल गये हैं। अंग्रेजीमें इनकी संस्थाका एक सुन्दर मासिक पत्र भी निकलता है।

सन् १९५२ में ५९ वर्षकी अवस्थामें अमेरिकामें ही योगानन्दजीने निर्वाण लाभ किया।

स्वामी योगानन्दकी शिक्षा

सबको प्रेम करो अपनाओ।
सबको अपना बंधु बनाओ॥
सेवा करना धर्म तुम्हारा।
भटका पथिक मिले जो हारा॥
सबको मानो प्रभुके नाते।
वे ही सबको पार लगाते॥
इससे सेवा-भाव बढ़ाओ।
मनमें पर अभिमान न लाओ॥
प्रभु सदैव मङ्गल करते हैं।
अविश्वास कर हम डरते हैं॥
उनको यदि हम अपना मानें।
माता-पिता-सुहृद् पहचानें॥
और उन्हें ही गुरु भी जानें।
फिर वे एक न एक बहाने॥
देते रहते अगणित झाँकी।
अमित प्यारकी अतुल कृपाकी॥
प्रभुकी कृपा अहैतुक पाकर।
बन जाता मनुष्य रत्नाकर॥